RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015–17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 76, अंक : 8 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 26 मई, 2019
विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120
दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–76, अंक : 8, 23–26 मई 2019 तदनुसार 12 ज्येष्ठ, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

भगवान् का मन्यु जो कुछ करता है उसे

ले०–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि।।

–ऋ० १०।८९।६

शब्दार्थ–न = न **द्यावापृथिवी** = द्यौ और पृथिवी, **न** = न **धन्व** = जल **न** = न **अन्तरिक्षम्** = अन्तरिक्ष **न** = न **अद्रयः** = पर्वत और **सोमः** = सोम **यस्य** = जिसके [सामर्थ्य को] **अक्षाः** = प्राप्त करते हैं **यत्** = जैसे **अधिनीयमानः** = अधिकारपूर्वक प्रयोग किया जाता हुआ **अस्य** = उस भगवान् का **मन्युः** = मन्यु **शृणाति** = काटता है, वह **स्थिराणि** = स्थिर पदार्थों को भी **वीळु** = बलपूर्वक **रुजति** = तोड़–फोड़ देता है।

व्याख्या–द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी, पर्वत, समुद्र आदि जगत् के पदार्थों के सामर्थ्य का तनिक विचार कीजिए। पृथिवी का एक नाम पूषा=पुष्टि करने वाली, पालने वाली है। समस्त प्राणियों की–कीट से लेकर मनुष्य तक सभी जीवों की पालना करती है। इसी दृष्टि से वेद में अनेक स्थानों पर पृथिवी को माता कहा गया है। भारीभरकम पर्वतों का धारण करना, नदी–नाले, समुद्रों को अपने उरः स्थल पर स्थान देना महती शक्ति की सूचना दे रहा है। विविध पदार्थों की, जिनकी गणना और इयत्ता मनुष्य भी पूर्णरूपेण नहीं जान सका, उत्पादिका होने से यह पृश्नि कहलाती है। द्यौ कितना विशाल है! पृथिवी से कई लाख गुणा विशाल सूर्य द्यौ में रहता है। वेद कहता है–**'सप्त दिशो नाना सूर्याः'** [ऋ० ९।११४।३]= अनन्त सूर्य हैं। असंख्य ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, ध्रुव, आकाश–गङ्गा आदि सभी द्यौ में रहते हैं। निःसन्देह द्यौ ससीम है, किन्तु मनुष्य उसकी ससीमता का निर्धारण न कर सका। इसी भाँति पृथिवी और द्यौ के अन्तरालवर्ती अन्तरिक्ष की महिमा भी विशाल है।

इन अति विशाल पदार्थों को जाने दीजिए। पृथिवी में कील के समान खड़े पर्वतों को देखिए। कहीं हिम से आच्छन्न हैं, कहीं वृक्षों से लदे हैं, कहीं सर्वथा निरावरण–नङ्गे हैं। इनमें आग है, पानी है, नीलम है, सोना है, चाँदी है, लोहा है, तांबा है और क्या नहीं है, यह कहना कठिन है। ये सब मिलकर भी उसकी महत्ता को नहीं पा सकते। इसके विपरीत उसका मन्यु देखिए, वह **'शृणाति'** काट–छाँट देता है। **'वीळु रुजति स्थिराणि'** = स्थिर पदार्थों को भी तोड़ देता है। मन्यु का अर्थ लौकिक संस्कृति में क्रोध होता है, किन्तु वैदिक भाषा में सभी शब्दों के यौगिक होने के कारण उसका अर्थ है–मननपूर्वक, आवेशपूर्वक किसी कार्य का सम्पादन। इस यौगिक सिद्धान्त के कारण ही मन्यु के सम्बन्ध में आता है–

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः।।

–ऋ० १०।८३।२

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु ही होता, वरुण और जातवेद है। मानुष प्रजाएँ मन्यु को पूजती या चाहती हैं, तप का प्रेमपूर्वक सेवन करने वाले मन्यो! तू हमारी रक्षा कर।

ऋग्वेद [१०।८३] में मन्यु कई पदार्थों के लिए प्रयुक्त है। अन्यत्र ऋग्वेद [१०।८४।२] में मन्यु को सेनानी=सेनानायक भी कहा गया है–**'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि'** = हे मन्यो! अग्नि की भाँति तेजस्वी सबको दबा और सेनानी=सेनानायक होकर, आमन्त्रित होकर युद्ध में समर्थ हो। प्रकृत मन्त्र में मन्यु का अर्थ भगवान् का प्रलयकारक बल है। वह समुद्र को सुखा देता है, पृथिवी को धूलि बनाता है, तेजोमय सूर्यादि को निस्तेज कर देता है। **(स्वाध्याय संदोह से साभार)**

ततो विराडजायत विराजो अधि पुरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।

–यजु० ३१.५

भावार्थ–परमात्मा से ही सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है। वह प्रभु उस जगत् से पृथक्, उसमें व्याप्त होकर भी, उसके दोषों से लिप्त न हो के इस सबका अधिष्ठाता है। ऐसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सदा आनन्द स्वरूप जगदीश की ही उपासना करनी चाहिए।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।

–यजु० ३१.६

भावार्थ–सबके पूजन योग्य और नेत्र, श्रोत्र, प्राणादि अमूल्य अनन्त पदार्थों के दाता परमात्मा ने, दधि, दुग्ध, घृत आदि भोज्य पदार्थ हमारे लिए उत्पन्न किए हैं। उसी जगत्पति ने वन में रहने वाले, सिंह, सूकर, श्रृगाल, मृगादि भागने वाले, पशु बनाए और उसी, प्रभु ने नगरों में रहने वाले, गौ, घोड़ा, ऊँट, भैंस, बकरी, भेड़ आदि उपकारी पशु बनाये, जो सदा हमारी सेवा कर रहे हैं। दयामय प्रभो! आपको, जो पुरुष, स्मरण नहीं करते, आपकी वैदिक आज्ञा को न मानकर, संसार के भोगों में फँसे रहते हैं, ऐसे कृतघ्न दुष्ट पापियों को जितने भी दुःख हों थोड़े हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

–यजु० ३१.७

भावार्थ–उस परम कृपालु जगत्पिता ने, हमारे इस लोक और परलोक के अनन्त सुखों की प्राप्ति के लिए चार वेद बनाये, उन को पढ़ सुन के हम, लोक परलोक के सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं। परमात्मा के ज्ञान और उपासना के बिना मुक्ति सुख नहीं प्राप्त हो सकता है और उसका ज्ञान और उपासना बिना वेदों के पढ़े सुने नहीं हो सकता। महर्षि लोगों का वचन है "नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्" वेदों को न जानने वाला कोई पुरुष भी उस व्यापक प्रभु को नहीं जान सकता। ऐसे लोक परलोक के सुख की प्राप्ति के लिए, हम सबको वेदों का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना आवश्यक है। बिना वेदों के न कोई ईश्वर का ज्ञानी हो सकता है न ही भक्त। जिसका ज्ञान नहीं हुआ उसकी भक्ति कैसे?

इन्द्र का सोमपान

ले.-महात्मा चैतन्यमुनि, सुन्दरनगर (हि०प्र०)

डा. कृष्ण लाल जी अपने एक लेख में लिखते हैं-'महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्यों में सोम का निवर्चन मुख्य रूप से तीन धातुओं से किया है। सु (पु षुञ् अभिषवे स्वादि०) से प्राय: औषध, सोमलता के समान आह्लादक आसव, रोगनाशक महोषधि (सोम) का रस, सोमलता के समान सब रोगों (कष्टों) के नाशक राजादि अर्थ सोम के लिए किए गए हैं **(वैद्यकशिल्प-क्रियाया) संसाधित ओषधीरस: ऋ०1-47-1, सोमवल्लयादि निष्पन्नमाह्लादकमासवविशेषं** वा० सं० 8-10, सर्वरोगनाशकं महौषधिरसम्-द्वितीय ऋ०3-53-6, **सोमवल्लीव सर्वरोग-विनाशक** (राजन्) वा० सं०34-22)। यास्क ने भी इसी धातु से निर्वचन करते हुए इसका अर्थ औषधि (सोम) किया है **(ओषधि: सोम: सुनोतेर्यदेनम-भिषुण्वन्ति।** (नि०11-2)। सू (षु प्रेरणेतुदादि०) से सोम का अर्थ सबको शुभ कर्मों और गुणों की प्रेरणा देने वाला परमेश्वर अथवा विद्वान् किया गया है। **शुभकर्मगुणेषु प्रेरक** (परमेश्वर विद्वान् वा) ऋ०1-91-3)। सु (षु प्रसवैश्वर्यो: भ्वादि०) से सोम का अर्थ सारे चराचर को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर तथा ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर दोनों ही हैं **(सुवति चराचरमं जगत्)**। वा० सं०3-56, ऋ०1-91-12)। सोमलता या उत्तम औषध के आह्लादक गुण को देखते हुए सम्भवतया महर्षि दयानन्द ने इसका अर्थ 'आनन्द' भी किया है। एक स्थल पर यजमान प्रतिज्ञा करता है कि मैं ईश्वर के उस सर्वत्र व्याप्त यज्ञ को आनन्द से हृदय में दृढ़ करता हूँ **(इन्द्रस्य परमेश्वरस्य तं भजनीयं यज्ञं सोमेनानन्दन दृढ़ीकरोमि। वा० 1-1-4)**। भावना यह है कि यज्ञानुष्ठान् करते हुए मैं असुविधा नहीं अपितु आनन्द का अनुभव करता हूँ।

इसमें सन्देह नहीं कि वेद में सोम अनेक स्थलों पर औषधि के रूप में वर्णित है और इसके पीसने, छानने और पात्रों में भरने का उल्लेख है। इसके प्रसंग में बहुत बार मद् धातु का प्रयोग भी हुआ है। जिसका अर्थ धातुपाठ में हर्ष या हर्षित होना **(मदि हर्षे) (दिवादि०माद्यति)** दिया है, उन्मत्त होना या नशे में होना नहीं। सोम आह्लादक है और इसलिए आनन्द का वाचक भी। इसी कारण ऋग्वेद में कहा गया है कि जिस सोम को ब्राह्मण विद्वान् ब्रह्मवेत्ता जानते हैं उसे कोई खाता या पीता नहीं **(सोमं यं ब्राह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन। ऋ०10-85-3)**। वह आध्यात्मिक सोम है जिसका सेवन मुख से नहीं किया जा सकता। यह केवल हृदय तथा मस्तिष्क द्वारा अनुभव किया जाने योग्य तत्व है। इसे सामान्य अधिषवण फलक पर बट्टे के द्वारा पीसा नहीं जाता और न ही सामान्य कलश में इसका संग्रह किया जा सकता है। वस्तुत: मानव शरीर ही इसको ग्रहण करने वाला कलश है और परिश्रम, तपस्या, अभ्यास ही इसके पीसने छानने आदि की प्रक्रिया के प्रतिरूप है। इसी आधार पर श्री अरविन्द इसे दिव्य आध्यात्मिक आनन्द मानते हैं मन्त्र में स्पष्ट उल्लेख है कि जिसने अपने शरीर को परिश्रम और तपस्या की आग में तपाया नहीं, कच्चे घड़े के समान वह उस आनन्द को ग्रहण करने में समर्थ नहीं। केवल तपे हुए, पके हुए ही उसे धारण करते हैं और उसका उपभोग करते हैं **(आतप्ततनूनं तदासो अश्नुते श्रृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत। ऋ०9-83-1)**। सोम (आनन्द) आत्मा का स्वामी, पालनकर्त्ता है। जब यह किसी के पास होता है तो उसके अंग-प्रत्यंग में फैल जाता है **(पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत:।** वही)। जिन महापुरुषों और कर्मठ व्यक्तियों ने कर्म परिश्रम की अग्नि में अपना तन, मन तपाया है वे स्वस्थ भी रहते हैं और आन्तरिक आनन्द भी अनुभव करते हैं। इस आनन्द के पश्चात् सभी बाह्य सुख निरर्थक हो जाते हैं (लेखक प्रणीत 'वैदिक संग्रह' पृ० 124)।

सारे विश्व में यही दिव्य आनन्दरूपी सोम सबसे स्वादिष्ट और मधुर तत्व हैं। यह तीव्रता से अंगों में व्याप्त हो जाता है। यही एक मात्र ऐसा रस है जो श्रेष्ठ है, जिसकी तुलना अन्य किसी रस से नहीं की जा सकती। जो इन्द्र अर्थात् जीवात्मा या राजा इसका पान कर लेता है, उसकी उत्तेजना, स्फूर्ति, शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि संघर्षों में, चुनौतियों में कोई सहन नहीं कर पाता, जीत नहीं पाता **(स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं तीव्र: किलायं रसवां उतायम्। उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु** ऋ०6-47-1)।

ऋग्वेद स्वयं सोम को आनन्द उत्पन्न करने वाला बताकर संभवतया उसे आनन्द रूप स्वीकार करने का संकेत किया गया है और बिन्दु रूप उससे प्रार्थना है कि वह इन्द्र अर्थात् जीवात्मा के लिए प्रवाहित हो **(सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्त्रव। ऋ०9-113-6)**। यह वह आनन्द है। जिसकी प्राप्ति पर सब दु:खों का नाश हो जाता है और मनुष्य मोद प्रमोद का अनुभव करता है, उसकी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं क्योंकि उस आनन्द के पश्चात् कोई कामना ही नहीं रह जाती है। वह अमरत्व की स्थिति है **(यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद: प्रमुद आसते। कामस्य यत्राप्ता: कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्त्रव।। ऋ०9-113-11)**। इस आनन्द का पान करने वाले ही यह उद्घोषणा कर सकते हैं कि हे अमर परमेश्वर हमने सोम (आनन्द) का पान किया है और हम अमर हो गए हैं। हमने दिव्य ज्योति को प्राप्त कर लिया है। हमने देवताओं को, वास्तविक देवत्व को जान लिया है, समझ लिया है। अब कोई दीन-हीनता की भावना हमारा क्या कर लेगी अर्थात् इस आनन्द के पश्चात् हमें किसी से कुछ लेना नहीं है। इसलिए कोई दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति जो, हिंसक है, हमारा क्या कर लेगा **(अपाम सोममृता अभूय अगन्म ज्योतिरविदान देवान्। किं नूनमस्मान् कृणवदराति: किं धूर्तिरमृत मर्त्यस्य।। ऋ०8-48-3)**।

यह अनुमान अनुचित नहीं होगा कि यदि महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के नवम् मण्डल का भाष्य किया होता तो वे भी सोम का अर्थ दिव्य अथवा आध्यात्मिक आनन्द ही करते। इस अनुमान का सम्पुष्ट आधार यह भी है कि यजुर्वेद भाष्य एक स्थल (1-4) पर उन्होंने सोम का अर्थ आनन्द किया ही है। ऋ० 1-22-1 **(अस्य सोमस्य पीतये)** पर दयानन्द भाष्य **स्तोतव्यस्य सुरकस्य**। इस दिव्य आनन्द का पान विद्वान् अमृतत्व के लिए करते हैं **(त्वां देवासो अमृताय कं पपु: ऋ०9-106-8)**। इसका वर्णन सबसे बड़े अर्थात् दिव्य अलौकिक मद् अर्थात् आनन्द के रूप में किया गया है **(ज्येष्ठयममर्त्यं मदम् ऋ०1-84-4)**। इसीलिए इसका उपभोग करने वाले के अंग-प्रत्यंग में इसका निवास होता है-यह सब प्राप्त होता है तो मनुष्य की सम्पूर्ण काया ही उससे प्रभावित होती है **(गात्रे गात्रे निषसत्था नृचक्षा:। ऋ०8-48-9)**। इस आनन्द का पान करने वाले की अबाध वाणी उदित होती है **(अयं मे पीत उदियर्ति वाचम्। ऋ०6-47-3)**। यही इन्द्र अर्थात् जीवात्मा या परमात्मा का आत्मा अर्थात् सार या मूल तत्व है **(आत्मेन्द्रस्य भवसि। ऋ०9-85-3)**। यह दिव्य आनन्द शारीरिक और मानसिक ताप का शोधक तत्व है। यह द्युस्थान अर्थात् मस्तिष्क **(अथ यत कपालमासीत् सा द्यौरभवत् श०ब्रा०6-1-2-3)** में फैल जाता है। इसके तन्तु सूत्र, चमकते हुए वहां अवस्थित हैं और वहीं से सारे शरीर को प्रभावित करते हैं **(तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ऋ०9-83-2)**। सारे शरीर को अपनी सूक्ष्मतम क्रियाओं के लिए मस्तिष्क से ही प्रेरणा मिलती है। जब वहां आनन्द के तन्तु फैले हों तो उनका प्रभाव समस्त शरीर क्रियाओं पर पड़ना स्वाभाविक है। इन तन्तुओं को आनन्द की तरंगें भी कहा जा सकता है। ये आनन्द की तरंगें ही आनन्द को चिरस्थाई बनाकर उसकी रक्षा करती हैं (लेखककृत 'वैदिक संग्रह' पृ०126)।

मस्तिष्क में स्थित सोम की रक्षा मस्तिष्क ही करता है। वही सब इन्द्रियों के धारण से गन्धर्व है। **(गा इन्द्रयाणि धारयति)** इन्द्रिय रूपी देवों की भी वह रक्षा करता है और उन्हें जीवन तथा शक्ति प्रदान करता है। कहीं भी आनन्द या इन्द्रियों के कार्य में व्याघात पहुंचे तो मस्तिष्क उसे पहचान कर रोकता है। इन्द्रियां यदि सत्कार्य करती हुई श्रेष्ठता प्राप्त कर लें तो निश्चय ही उन्हें मस्तिष्क का मधुर फल प्राप्त होता है **(गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुत:। गृभ्णाति रिपुं निधया निधापति: सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत।।** ऋ०9-83-4 द्र० लेखक प्रणीत 'वैदिक संग्रह' पृ० 133)। यदि आनन्द मनुष्य के संयम से सुरक्षित रहता है तभी वह इन्द्रियों को सत्कार्यों की प्रेरणा देता है। अन्यत्र कहा गया है कि यह दिव्य आनन्द मनुष्य को क्रमश: बिन्दु-बिन्दु के रूप में प्राप्त होता है। आरंभ में ही जब ये बिन्दु किसी को प्राप्त होते हैं तो ये मस्तिष्क में एक साथ शब्द करते हैं। ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें किसी दूसरे के द्वारा सुना ही नहीं जा सकता है। इन्हें ही परावाक् कहा जा सकता है। सूफी इसे ही अनन्तनाद कहते हैं। ये उसी प्रकार

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय

वेदों में आदर्श परिवार का स्वरूप

परिवार मानव समाज की श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण संस्था है। सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र का निर्माण परिवार से प्रारम्भ होता है। मनुष्य का जीवन चार भागों में बांटा गया है, ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम। समाज एवं राष्ट्र के निर्माण की धुरी गृहस्थाश्रम है। बाकि तीनों आश्रम गृहस्थ आश्रम पर आश्रित हैं। व्यक्तियों के सुश्रृंखलित रूप का नाम ही परिवार है। संस्कृत कोश शब्दकल्पद्रुम में परिवार की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है- परिव्रियते अनेन अर्थात् जिससे व्यक्ति घेरा जाए, वह परिवार है। अतः परिवार की उन्नति में सभी को योगदान देना चाहिए। जिस प्रकार एक दीप-शलाका का निर्माण अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता, उसके लिए लकड़ी चाहिए, गन्धक चाहिए, कागज चाहिए, फिर नाना प्रकार की मशीनें चाहिए तब दियासलाई का निर्माण होता है, इसी प्रकार घर के सभी सदस्यों से मिलकर परिवार का निर्माण होता है। सभी व्यक्तियों को अपने उत्तरदायित्व को समझते हुए परिवार के निर्माण में अपना योगदान देना चाहिए। सभ्य परिवारों के निर्माण से सभ्य समाज का निर्माण होता है और सभ्य समाज के द्वारा सभ्य राष्ट्र का निर्माण होता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परन्तु उसका सम्बन्ध केवल अपने आप से ही नहीं है, बल्कि उसका सम्बन्ध दंपति, कुटुम्ब, जाति, समाज और समस्त संसार के मनुष्यों तथा समस्त संसार के प्राणिमात्र से है, इसलिए उसे सबके साथ प्रेम, दया और सहानुभूति के साथ रहना चाहिए। ऋग्वेद में आदर्श दंपतिप्रेम का नमूना प्रस्तत करते हुए कहा है कि जो दंपति एक मन होकर यज्ञ अर्थात् उत्तम कामों के लिए साथ-साथ दौड़ते हैं और नित्य परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं, वे देवता हैं।

हे दंपति! तुम दोनों इस सुखदायक घर में अच्छे प्रकार जागते हुए, हँसी खुशी के साथ, बड़े प्रेम से आनन्द मनाते हुए, सुन्दर सुपुत्रों और सुन्दर गृहस्थ वाले होकर प्रकाशयुक्त बहुत से प्रात:कालों को देखो, अर्थात् बहुत दिन तक जीओ। इन वेदमन्त्रों में दम्पत्तिप्रेम का उत्कृष्ट नमूना यह बतलाया गया है कि दोनों एक मन होकर आनन्दपूर्वक उत्तम कर्मों में लगे रहें और परस्पर प्रेम और विनोद के साथ व्यवहार करें। परिवार में एक दूसरे के प्रति किस प्रकार की भावना हो, इस पर प्रकाश डालते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि-पुत्र पिता का आज्ञाकारी और माता का इच्छाकारी हो, तथा स्त्री पति से मधुर और शान्त वाणी से बातचीत करे। भाई से भाई द्वेष न करे और बहन से बहन ईर्ष्या न करे। सब लोग अपने व्रत और मर्यादा में रहकर सदैव आपस में भद्रभाषा में ही बातचीत करें।

सबके प्रति पवित्र भावना रखने का संदेश देते हुए यजुर्वेद अध्याय १९वें के मन्त्र ३७,३८ में उपदेश दिया गया है कि सौम्य पिता मुझे पवित्र करें और, पितामह मुझे पवित्र करें और सौम्य प्रपितामह मुझे पवित्र करें, जिससे मैं सौ वर्ष जीने वाला होऊँ। मुझे समस्त देवजन पवित्र करें, मेरा मन और बुद्धि मुझे पवित्र करे, समस्त पञ्चभूत मुझे पवित्र करें और अग्नि मुझे पवित्र करे। इन मन्त्रों में वृद्धों की सेवा से पवित्रता और दीर्घायु की प्राप्ति बतलाई गई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक शिक्षा में बड़े बूढ़ों के मान और सेवा के लिए कितना जोर दिया गया है।

अपने परिवार से सम्बन्ध रखने वाले अन्य जातिबन्धुओं के प्रति सुख की कामना करने का संदेश देते हुए ऋग्वेद के ७वें मण्ड्ल में कहा गया है कि- माता-पिता, जाति वाले नौकर-चाकर और कुत्ते आदि पशु सब सुख से सोवें। आत्मीय जन, पिता, पुत्र, पौत्र, पितामह, स्त्री, पितामही, माता और जो स्नेह रखने वाले हैं, उनको मैं आदर से बुलाता हूँ-

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः।। ऋ. ७/५५/५
आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम्।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुपह्वये।। अ. ९/५/३०

सामाजिक जीवन में मित्र का स्थान महत्वपूर्ण है। मित्र समाज का अभिन्न अंग है। समाज के हर व्यक्ति का मित्र के रूप में किसी न किसी प्रकार से सहयोग मिलता है। मित्र के साथ व्यवहार करने का ऋग्वेद के १० वें मण्डल में उपदेश दिया गया है कि- मित्र के सहवास और यश से सब आनन्दित होते हैं। मित्र धन देकर समाज के पापों को दूर करता है और सबका हितकारी होता है। वह सखा अर्थात् मित्र नहीं है जो धनवान होकर अपने मित्र की सहायता नहीं करता। उसका घर सच्चा घर नहीं है। उसके पास से तो सदैव ही दूर भागना चाहिए। दो मन्त्रों में मैत्री के भाव और कर्त्तव्य को अच्छी तरह बतला दिया गया है कि मित्र को भी कुटुम्ब और जाति की भांति ही सहायक होना चाहिए-

सर्वे नन्दति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय।।
ऋ. १०/७१/१०
न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्।।
ऋ. १०/११७/४

कर्म के आधार पर समाज में समरसता लाने के लिए हमारे शास्त्रों में वर्णव्यवस्था का प्रचलन हुआ था जो वर्तमान में हमें जातियों के रूप में देखने को मिलता है। वर्णव्यवस्था का उद्देश्य मनुष्यों को जातियों में बांटना नहीं था अपितु योग्यता के आधार पर कार्य का विभाजन करना था। सभी वर्णों के साथ मनुष्य को एक जैसा व्यवहार करने का आदेश यजुर्वेद में दिया गया है कि-मुझे ब्राह्मणों में प्रिय कीजिए, क्षत्रियों में प्रिय कीजिए, वैश्यों में प्रिय कीजिए और शूद्रों में प्रिय कीजिए। हमारी ब्राह्मणों में रूचि हो, क्षत्रियों में रूचि हो, वैश्यों तथा शूद्रों में रूचि हो। चारों वर्णों में एक दूसरे के प्रति स्नेह की भावना रखने का सन्देश वेद में दिया गया है-

प्रियं का कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।। अथर्व. १९/६२/१
रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रूचं राजसु नस्कृधि।
रूचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रूचा रूचम्।। यजु. १८/४८

भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श वाक्य के अनुसार जीवन जीना सिखाया जाता है तथा सर्वे भवन्तु सुखिनः का पाठ किया जाता है। इसलिए सभी जीवों से प्रेम करने की आदर्श भावना वेद से सीखने को मिलती है। किसी के प्रति भेदभाव की भावना किसी के अन्दर न हो, जाति के आधार पर समाज का विभाजन न हो, ऊँच-नीच के आधार पर किसी के साथ छल न हो, इसके लिए वेद ने समरसता पर बल दिया है। समरसता के आधार पर ही समाज में सौहार्द की भावना आ सकती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि तुम सब मनुष्यों के जलस्थान एक समान हों और तुम सब अन्न को एक समान ही बाँट कर लो। मैं तुमको एक ही पारिवारिक बन्धन से बाँधता हूं। इसलिए तुम सब मिलकर कार्य करो, जैसे रथचक्र के सब ओर एक ही नाभि में लगे हुए अरे काम करते हैं।

मैं तुम्हारे हृदयों को एक समान करता हूँ और तुम्हारे मनों को विद्वेषरहित करता हूँ। तुम एक दूसरे को उसी तरह प्रीति से चाहो, जैसे गौ अपने सद्याजात बछड़े को चाहती है। जो जीव मन, वाणी से इस प्रकार की समानता के पक्षपाती हैं, उन्हीं के लिए मैंने इस लोक में सौ वर्ष तक समस्त ऐश्वर्यों को दिया है। इन मन्त्रों में मनुष्य मात्र के साथ समता का व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। इसमें अच्छी प्रकार निर्देश दिया गया है कि समस्त मनुष्यों की सम्पत्ति, विचार और रहन-सहन एक समान होना चाहिए। तभी समाज में समरसता का भाव पैदा किया जा सकता है।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।। अथर्व. ३/३०/६
सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। अथर्व. ३/३०/१
ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतं समाः।। यजुर्वेद १९/४६

समस्त मनुष्यों के साथ एक समान व्यवहार की शिक्षा देकर वेदों में यह भी सन्देश दिया गया है कि मनुष्यों के साथ ही नहीं प्रत्युत प्राणिमात्र के साथ प्रेम, दया और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए। वेद में उपदेश दिया गया है कि-मेरी दृष्टि को दृढ़ कीजिए, जिससे सब प्राणी मुझे मित्रदृष्टि से देखें। इसी तरह मैं भी सब प्राणियों को मित्रदृष्टि से देखूँ और हम सब प्राणी परस्पर एक दूसरे को मित्र दृष्टि से देखें-

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्या चक्षुषा समीक्षामहे।।
यजु. ३६/१८

इन मन्त्रों में परिवार से लेकर समस्त संसार के मनुष्यों और समस्त प्राणियों तक के साथ प्रेम, दया, समता, सहानुभूति और मित्रता के भावों के दर्शाने वाले मन्त्रों का समावेश है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वेदों में नारी की स्थिति

ले.-शिवरानारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

कुछ वर्ष पूर्व मुझे आश्रय भवन कोटा में आयोजिक एक संस्कार विषयक गोष्ठी में सम्मिलित होने तथा अध्यक्षता करने का सुअवसर मिला था। गोष्ठी के मुख्यवक्ता स्थानीय श्री बिट्लनाथ संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री शामनन्दन मिश्र थे। उन्होंने जब पुंसवन संस्कार में बताया कि इस संस्कार में परमात्मा से परिवार को एक श्रेष्ठ पुत्र रत्न प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है तब प्रसिद्ध पर्यावरण विद् एवं जैन धर्म के गहन अध्येता श्री सूरजमल जैन ने प्रश्न किया कि क्या वेद में एक श्रेष्ठ कन्या प्रदान करने की भी प्रार्थना परमात्मा से की जाती है। इस पर वक्ता का उत्तर नकारात्मक था। इस पर विवाद छिड़ गया कि वेद में स्त्री जाति की स्थिति दोयम् दर्जे की है तो यह स्त्री जाति के लिए सम्मान जनक नहीं है। मैंने अपने व्याख्यान में ऋ. 10.159 की प्रथम तीन ऋचाओं की व्याख्या कर विवाद शांत कर दिया। ऋचाएं निम्नांकित है-

उदसौ सूर्यो अगादुदयं-मामकोभगः।

अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः।। ऋ.10.159.1

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।

ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत।। ऋ. 10.159.2

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।

उताहमस्मि सञ्जया मे श्लोक उत्तमः।। ऋ.10.159.3

परन्तु मैं स्वयं सन्तुष्ट नहीं हुआ। 29 मई 2011 को आर्य समाज भारत हल्ली बंगलुरू में मुझे वेदों में स्त्री की स्थिति पर व्याख्यान देने को कहा गया। इस हेतु मैंने वेदों का विहंगावलोकन किया तो सामवेद के दो मंत्रों में समाधान होता पाया गया। सामवेद मंत्र संख्या 1460 तथा ऋ. 7.96.4 इस प्रकार है- **जनीयन्तोः न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे।।** इस मंत्र के ऋषि वसिष्ठ हैं। वसिष्ठ ने अपने विवाह के समय पत्नी का हाथ थामते हुए कहा था, '**त्वया वयं धारा उदन्या इव अतिगाहे महि द्विषः**' तेरे साथ मिलकर हम प्रीति कर दुर्गुणों को ऐसे तैर जाएं जैसे पर्वतीय जल धाराओं को हाथ पकड़ कर हम पार करते हैं।

मन का अर्थ है-ऋषि ने (जनीयन्तः) पत्नी की कामना की परन्तु केवल इसलिए कि (नु) अब वे (अग्रवः) आगे बढ़ सकेंगे। इस संसार सागर को अकेला पार करना अति कठिन है। पति-पत्नी मिलकर इसे पार करने में समर्थ हो सकते हैं। उन्होंने (पुत्रीयन्तः) सन्तान (पुत्र, पुत्री) को भी चाहा पर केवल (सुदानवः) इस भावना से कि अपने (सु) उत्तमांश को (दानवः) लोकहित के लिए अपने पीछे छोड़ जावें। (सरस्वन्तम् हवामहे) ज्ञान के सागर परमात्मा को हम सदा पुकारते हैं। पण्डित तुलसीदास ने अपने सामवेद भाष्य में इस मंत्र का भाष्य करने के अनन्तर लिखा है- 'सामश्रमीजी कहते हैं कि विवरण के मत में यह एक ऋचा का सूक्त नहीं है किन्तु दो ऋचाओं का प्रगाथ है तथा च अगली 'उत नः यह ऋचा इसी सूक्त की दूसरी ऋचा है। अब दूसरी ऋचा पर विचार करते हैं-**उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्।।'**

इस ऋचा में सुख देने वाली, मनोहर सर्वप्रिय सरस्वती का वर्णन है जो सात बहिनों पांच प्राण, मन और बुद्धि के समान स्तुति करने के योग्य है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि पूर्व मंत्र में एक सुलक्षणा कन्या की ही कामना की गयी है। वास्तव में वेदों में स्त्री और पुरूष में किसी को यदि दूसरे से श्रेष्ठ बताया गया है तो वह स्त्री ही है। वैसे आत्मा का कोई लिंग नहीं होता है। परमात्मा को भी सृष्टि का माता और पिता दोनों माना गया है।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे।।

हे। (वसो) सबको निवास देने वाले प्रभो। (त्वंहि) निश्चय से आप ही (नः) हमारे (पिता) पालन करने वाले पिता और (त्वं) आप ही हमारी (माता) माता (बभूविथ) हो। (माता निर्माता भवति) (शतक्रतोः) आप अनन्त ज्ञान एवं कर्मों के स्वामी हो। (अथ) अब (ते) आपके ही (सुम्नम्) स्तोत्रों को (ईमहे) हम चाहते हैं। वेदों में धर्म शास्त्र के अध्ययन एवं शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मानव मात्र को प्राप्त है।

यजुर्वेद 26.2 देखिये यथेमां वाचं कल्याणीमावदानी जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय च।

प्रिया देवानां दक्षिणायै दात्तुरिह भूयासमयं मे काम समृध्यता-मुपंमादो नमतु।

यजुर्वेद अध्याय 7 मंत्र संख्या 33 के भावार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं-'सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को योग्य है कि समस्त बालक एवं बालिकाओं के लिए निरन्तर विद्या दान करें। राजा एवं धनी पुरूष इन लोगों के लिए धनादि से इनकी आजीविका की व्याख्या करें। वेदों में स्त्री शिक्षा पर इतना अधिक बल दिया गया है कि विद्या और वाणी की दात्री देवी सरस्वती को माना गया है। इतना ही नहीं वेदों में अनेक बल दिया गया है कि विद्या और वाणी की दात्री देवी सरस्वती को माना गया है। इतना ही नहीं वेदों में अनेक स्थानों पर ऋषिकाएं है जिनमें सरस्वती, घोषा, अपाला, सविता, सर्पराज्ञी, सूर्या, सावित्री, अदिति-दाक्षायणी, लोपामुद्रा, विश्ववारा आत्रेयी आदि अति प्रसिद्ध है।

कन्या को परिवार पर बोझ नहीं मानकर परिवार का धन माना गया है।

विवाह के अवसर पर कन्या का पिता अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त करता है-

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टं मर्यम्मा-संभृतं भगम्।

धातुर्देवस्थ सत्येन कृणोमि पतिवेदनम्।। अथर्व. 2.36.2

(भगम्) मैं इस कन्या रूप ऐश्वर्य को उस (धातुः देवस्य) प्रभु के (सत्येन) सत्य नियम के अनुसार (पतिवेदनम्) पति का धन (कृणोमि) करता हूँ। (सोमजुष्टम्) यह कन्या अत्यन्त सौम्य स्वभाव वाली है, (ब्रह्म जुष्टम्) ज्ञान से वित हुई है, (अर्यम्मा संभृतम्) अत्यन्त संयमी जीवन जीने वाली है।

इसी प्रकार अथर्व. 2.36.6 में कहा गया है-'**आकृन्दय धनपते वरमानसं कृणु**' हे (धनपते) कन्या रूप धन के पिता। आप (वरम्) वर को (आक्रन्दय) आदर पूर्वक आमंत्रित कीजिये। उसे उचित व्यवहार से (आमनसम्) अनुकूल मन वाला (कृणु) कीजिये।

फिर कन्या को स्वयंवर विधि से कई योग्य युवाओं में से अपने लिए एक जीवन साथी, पति चुनने का अधिकार दिया गया है। युवाओं को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है। हम सभी जानते हैं कि चुनने वाले की स्थिति चुना जाने वाले से ऊंची होती है। युवती अपने वर में किन-किन गुणों का पाया जाना आवश्यक समझती है। इस विषय पर वेदों में विस्तृत वर्णन हुआ है यहां हम केवल तीन मंत्र उद्धृत कर रहे हैं-

'उपयाम गृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चिनोधाऽअसि चनो मयि धेहि।

जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सावित्रे।।

यजु. 8.7'

कन्या वर से कहती है-आप (उपयामगृहितः) उपासना के द्वारा यम-नियमों के धारक हो (सावित्रः असि) आप सविता देव के उपासक हो अर्थात् आपका जीवन नियमित है। (चनोधाः) आप निश्चय से उत्तम अन्न के धारण करने वाले (असि) है। (चनो मयि धेहि) मुझमें अन्न धारण कीजिये। (यज्ञं जिन्व) आप यज्ञ को भी प्राप्त है अर्थात् अपनी आप में से यज्ञ (परोपकार) श्रेष्ठ कर्म) में भी व्यय करते हैं।

(यज्ञपतिं जिन्व) प्रभु यज्ञ पति है। मैं (त्वा) आपको (भगाय) ऐश्वर्य के लिए प्राप्त होती हूँ। (देवाय त्वा) मैं आपको दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए स्वीकार करती हूँ।

इस मंत्र में वर में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान जीविकोपार्जन में सफलता तथा परोपकारी भावना के गुणों को बताया गया है।

उपयामगृहीतोऽस्यादि तेभ्य-स्त्वा।

विष्णुऽउरू गायैष ते सोमस्तꣳरक्षस्व त्वा दभन।।

यजु. 8.1

वधु वर से कहती है-(उपयाम गृहीताः असि) आपको जीवन प्रभु की उपासना द्वारा यम-नियमों से स्वीकृत हुआ है। मैं (आदितेभ्यः त्वा) सूर्य के समान प्रजाओं के लिए आपको वरती हूँ। (विष्णो) आप विष्णु हैं। आपका मन विशाल है। आपमें कृपणता नहीं है। (उरूगाय) आप प्रभु का बहुत ही गायन करने वाले हैं। (एषः ते सोम) यह आपकी सोम शक्ति है (त्वंरक्षस्व) उसकी आपको रक्षा करनी है (मा) मत

(शेष पृष्ठ 7 पर)

वेद में राष्ट्रभक्ति का वर्णन

ले.-अशोक आर्य, रामप्रस्थ ग्रीन सेक्टर ७ वैशाली (गाजियाबाद)

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस कारण विश्व में जितने भी प्रकार के सत्य ज्ञान हैं, उन सब के दर्शन हमें वेद में मिलते हैं। इन सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञान में देशभक्ति भी एक प्रमुख ज्ञान है। हमारे इस लेख का विषय भी देशभक्ति अथवा राष्ट्रभक्ति ही है। जो व्यक्ति अपने देश से प्रेम नहीं करता, इसकी वृद्धि नहीं चाहता, वह मनुष्य न होकर गन्दी नाली के कीड़े के समान है। अत: आओ हम अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के आधार पर देश प्रेम को समझें। अथर्ववेद में राष्ट्रभक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है:-

सत्यं बृहद्तमुग्रं दीक्षा तपो यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरूं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।। अथर्ववेद १२.१.१।।

मन्त्र का भाव है कि हम इस मन्त्र में बताई सात शक्तियों के अनुसार चलते हुए आगे बढ़े तो निश्चय ही हमारा राष्ट्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर रहेगा। यह सात शक्तियां अवलोकनीय हैं।

सात महाशक्तियां किसी भी राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए उस देश के निवासियों में यह सात गुण वेद ने आवश्यक माने हैं। वेद कहता है कि देश की प्रगति केवल और केवल तब ही संभव है, जब देशवासियों में:-

१. महान् सत्य

राष्ट्रभक्ति के लिए महान् सत्य नामक गुण का होना आवश्यक है। जिस देश के नागरिक असत्य का आश्रय लेंगे, उस देश में लड़ाई-झगड़ा, कलह क्लेश बना रहेगा क्योंकि असत्य आचरण होने के कारण कोई भी किसी दूसरे की बातों पर, योजनाओं पर, लेन-देन पर, शिक्षा-दीक्षा पर विश्वास ही नहीं करेगा। (यह स्थिति हम वर्त्तमान भारत के नेताओं में खूब देख रहे हैं, जिनकी अविश्वसनीय धारणा के कारण देश में प्रतिदिन कलह बढ़ती जा रही है और देश की स्वतंत्रता पर खतरा मंडराने लगा है।) इसलिए मन्त्र उपदेश कर रहा है कि हे देश की उन्नति चाहने वाले नागरिको तथा देश के नेताओं! सदा सत्य पर आचरण करो। यह ही उन्नति का श्रेष्ठ मार्ग है। इससे ही हमारा राष्ट्र आगे बढ़ पावेगा।

२. सत्य ज्ञान

सृष्टि के आरम्भ में चार सर्वश्रेष्ठ ऋषियों के माध्यम से मानव मात्र के कल्याण के लिए परमपिता परमात्मा ने हमें वेद का उत्कृष्ट ज्ञान दिया। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण केवल यह वेद का ज्ञान ही सत्य ज्ञान है, अन्य जितने भी ज्ञान हैं, यदि वह इस वेद ज्ञान से मेल खाते हैं तो सत्य हैं, अन्यथा गलत हैं, असत्य हैं। मन्त्र कहता है कि हमें सत्य-ज्ञान का ही आचरण करना है। सत्य ज्ञान पर चलते हुए ही हम उन्नति के मार्ग पर चल सकते हैं। हमारी उन्नति में ही राष्ट्र की उन्नति निहित है। अत: वेद का नित्य स्वाध्याय हमारे लिए अत्यावश्यक है।

३. दृढ़ संकल्प

संकल्पहीन व्यक्ति की स्थिति सदा मुरादाबादी लोटे की भाँति डांवाडोल रहती है। उसको जो भी कोई व्यक्ति जैसा भी कुछ सुझाव देता है, मार्गदर्शन करता है, वह उसके ही अनुसार कार्य करने लगता है। इस कारण कभी कुछ आदेश निकालता है और कभी कुछ। इससे देश में अव्यवस्था फैल जाती है क्योंकि एक दिन एक आदेश आता है और दूसरे दिन उस आदेश के उल्ट कुछ और आदेश आ जाता है। इसलिए न केवल जनता अपितु राजनेताओं को भी अपने संकल्प पर कठोर व्रती होना आवश्यक हो जाता है। जब वह खूब सोच-विचार कर दृढ़ संकल्प हो कोई निर्णय लेंगे तो उसके कार्यान्वयन में कोई कठिनाई नहीं आवेगी।

४. कर्तव्य परायणता

राष्ट्र के नवनिर्माण में कर्तव्य परायणता का विशेष योग होता है। एक कर्तव्यहीन नागरिक अथवा नेता पूरे राष्ट्र को नरक की ओर धकेलने का कारण बनता है किन्तु कर्त्तव्यशील नागरिक अपने कर्तव्य को भली प्रकार जानता है और सदा इन्हें सम्मुख रखते हुए ही अपना प्रत्येक कार्य व्यवहार करता है। इससे देश निरंतर उन्नति पथ का पथिक बना रहता है।

५. तपस्वी वृत्ति-तप और स्वार्थ जीवन के दो पहलू हैं। जहाँ स्वार्थ देश में कटुता पैदा कर विनाश की ओर ले जाता है, वहां तपस्वी वृति व्यक्ति देश को उन्नति के मार्ग पर बनाए रखता है क्योंकि तपस्वी व्यक्ति को खाने, पहनने या फैशन की आवश्यकता नहीं होती। यह तो इस प्रकार के व्यय को अपव्यय मानता है। इससे देश की विपुल धन-संपत्ति बच जाती है, जिसे देश के नव-निर्माण के कार्यों में लगाया जा सकता है।

६. ज्ञान-विज्ञान की विद्वत्ता

अज्ञानी या अविद्वान् व्यक्ति अपनी मूर्खता के कारण बहुत से गलत कार्य कर जाता है, जिनका उसे ज्ञान ही नहीं होता। इससे न चाहते हुए भी देश का अत्यधिक अहित हो जाता है। इसलिए देश में ज्ञान-विज्ञान का खूब प्रचार होना आवश्यक है ताकि जो भी कार्य किया जावे, उसका आरम्भ करने से पूर्व यह ज्ञानी लोग विचार-विमर्श कर इसके गुण-दोष को जान सकें और जो उत्तम है, उसे ही व्यवहार में लावें।

७. सर्वकल्याण की भावना

जब किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक प्राणी में सर्वमंगल की वृत्ति होगी, वह सब के कल्याण की सदा इच्छा करेगा तो निश्चय ही उसके अन्दर दूसरों की सहायता की भावना बलवती होगी। इस दूसरों की सहायता को ही परोपकार कहते हैं। जब मानव में परोपकार की वृत्ति आ जाती है तो वह स्वार्थ की ओर कभी देखता ही नहीं। इस प्रकार से की गई सेवा को निष्काम सेवा भी कहते हैं। जब मानव निष्काम सेवा करने लगता है तो वह व्यक्तिगत उन्नति की चिन्ता के स्थान पर दूसरों की उन्नति के लिए कार्य करता है। इसे ही सर्वमंगल की भावना कहते हैं। जब वह इस भावना से काम करता है तो इसे परोपकार कहते हैं। जहां नागरिक परोपकारी हैं, उस राष्ट्र का उन्नत होना निश्चित हो जाता है।

जब देश के नागरिकों में यह सात महाशक्तियां आ जाती हैं, नागरिक इन महाशक्तियों के गुण-दोष समझने लगते हैं तथा इनके गुणों के अनुरुप ही कार्य करते हैं तो राष्ट्र इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ता है कि विश्व के अन्य देशों में इस देश का यश और कीर्ति फ़ैल जाती है और यह राष्ट्र बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

मातृभूमि हमें विस्तृत प्रकाश दे।

मन्त्र के इस दूसरे भाग में बताया गया है कि हमारी मातृभूमि उत्तम अनुभवों को संभालती है और हमारे इन कार्यों के आधार पर हमारे भविष्य को बनाने का कार्य करती है। इसलिए मन्त्र उपदेश करता है कि हमारी मातृभूमि हमें अत्यधिक विस्तार वाला स्थान हमारे हितसाधन के लिए दें और यह हितप्रकाश के बिना संभव ही नहीं। इसलिए हमें ज्ञान का प्रकाश भी दे। इस तथ्य को समझने के लिए हम एक बार फिर सात महाशक्तियों की ओर देखते है। यह शक्तियां जिस राष्ट्र के नागरिकों के जीवन का अंग बन जाती हैं, वह राष्ट्र सदा स्थायी रूप में रहता है, उन्नति पथ पर अग्रसर होता चला जाता है। इसमें सदा खुशहाली ही निवास करती है। किसी को कभी भी कोई दु:ख, कष्ट, क्लेश नहीं होता।

हमारा संकल्प

मन्त्र के इस भाग में नागरिकों के लिए एक संकल्प लेने को भी कहा गया है। नागरिक संकल्प लेते हुए प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं कि हे मातृभूमि! हम इस देश के नागरिक ऊपर दी सातों महाशक्तियों को धारण करने का संकल्प लेते हैं कि हम तेरे लिए इन सातों गुणों से संपन्न होकर तेरी रक्षा करने के लिए सदा तैयार हैं। तेरे अन्दर भूतकाल के पदार्थ गड़े हुए हैं, वर्त्तमान का सब कुछ तेरे पास उपलब्ध है तथा भविष्य बनाने के लिए भी तू नित्य उत्सर्जन कर रही है। तू इन तीनों कालों के सब के सब पदार्थों का उत्तम प्रकार से पोषण करने में समर्थ है। सातों गुणों को धारण करने के कारण हम इन पोषक तत्वों को बनाए रखने के लिए सदा अपने जीवन को लगाए रखेंगे।

पृष्ठ 2 का शेष-इन्द्र का सोमपान

निरन्तर गति करते हैं जिस प्रकार किसी तत्व के सूक्ष्म अवयव गति करते हैं जिस प्रकार किसी तत्व के सूक्ष्म परमाणु के केन्द्र में उसके अति सूक्ष्म अवयव गति करते हैं। ये बिन्दु मिलकर दिव्य आनन्द होते हैं जो मस्तिष्क के तीनों भागों अग्रपश्च और मध्य को ग्रहण करते हैं। यह दिव्य आनन्द असुर अर्थात् प्राण या शक्ति देने वाला है। सत्यरूपी नौकाओं के द्वारा ही मनुष्य अच्छे कार्य कर के संसार के दुःखों के जंजाल को पार कर इस आनन्द को प्राप्त करता है **(स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्करन् ऋतस्य योना समरन्त नाभयः त्रीन्त्स मूर्ध्वो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीयरन्।। 9-7-3-1)**। जिस व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है, उसके पास ये आनन्द बिन्दु मिलकर गति करते हैं और ये कमनीय बिन्दु उसके हृदयरूपी समुद्र में **(तु धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितं अन्तः समुद्र हृद्यन्तरायुषि। ऋ०4-58-11)** हिलोरें उत्पन्न करते हैं। ये अपनी माधुर्यपूर्ण धाराओं से हृदय में संगीत उत्पन्न करते हैं और उसके द्वारा उस जीवात्मा के शरीर को बढ़ाते अर्थात् सम्पुष्ट करते हैं **(सम्यक् सम्यंचो महिषा अंहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्। मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियमिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन्।। ऋ०9-7-2)**।

इन आनन्द बिन्दुओं का प्रभाव ऐसा है कि ये पवित्र बिन्दु वाणी को परिवेष्टित कर लेते हैं अर्थात् इनसे युक्त व्यक्ति की वाणी में इनका माधुर्य स्पष्ट झलकता है। सर्वव्यापक परमेश्वर इनके द्वारा हृदय रूपी समुद्र को आच्छादित कर लेता है। परन्तु विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्हें धारण और ग्रहण करने में केवल धैर्य और प्रज्ञा से युक्त जन समर्थ होते हैं **(पवित्रवन्तः परि वाच-मासते...महः समुद्रं वरूण-स्तिरोदधे धीरा इच्छेकुर्धरूणे-ष्वारभम्।। ऋ०9-73-3)**। ये आनन्द बिन्दु मन में जो सामान्यतया सहस्त्रों धाराओं वाला है एक साथ शब्द करते हैं। इनकी वाणी मधुर है और ये मस्तिष्क के सुखमय स्थान पर विपर्यस्त नहीं होते। परन्तु फिर भी इनकी सुरक्षा आवश्यक है क्योंकि इस स्थिति की सुरक्षा आवश्यक है क्योंकि इस स्थिति को प्राप्त कर मनुष्य गर्वित होकर आनन्द गवां सकता है। इसलिए इस आनन्द के अदृश्य गुप्तचर तीव्र गति से इनकी सब क्रियाओं को देखते रहते हैं। ये पलक नहीं झपकते और प्रत्येक पद पर तनिक स्खलन होते ही मानो पाश में बान्ध कर दण्डित करते हैं। इसलिए एक बार आनन्द की स्थिति प्राप्त होने पर साधक को पूर्ण सावधान रहना होता है **(सहस्राधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिव्हा असश्चतः। अस्य स्पशों न नि भिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनः सन्ति से तवः।। ऋ०9-73-4)**। ये आनन्द बिन्दु अपनी प्रज्ञाशक्ति से विस्तृत मस्तिष्क की विचार-प्रणाली से उस कृष्णवर्ण अज्ञानान्धकार के आवरण को सहज ही हटा देते हैं जिससे विशुद्ध मन अथवा जीवात्मा द्वेष करता है अर्थात् निकट नहीं रखना चाहता **(इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि।। ऋ०9-73-5)**। जो आनन्द बिन्दु अपने पुरातन परिमाण से इकट्ठे होकर एक साथ शब्द करते हैं वे प्रशंसा को नियन्त्रित करते हैं अर्थात् अन्यजनों से होने वाली प्रशंसा से दिव्य आनन्द के उपभोक्ता को गर्वित होकर पथभ्रष्ट नहीं होने देते। ये वेग को मानने वाले हैं अर्थात् जीवन में वेग तथा स्फुर्ति उत्पन्न करते हैं। जो पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को नहीं देखते और आत्मा की बात या हित की बात नहीं सुनते उन्हें वे छोड़ देते हैं। अर्थात् ऐसे व्यक्तियों को दिव्य आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। वे दुष्कृत जन बुरे कार्यों में उलझे रहते हैं और ऋत् के शाश्वत् नियम के मार्ग को पार नहीं करते। सत्कार्यों और सदाचरण से दिव्य आनन्द की प्राप्ति ऋत् है। यह ऐसा सत्य है जो सदा अटल है, शाश्वत् नियम है **(प्रत्नान्मानादध्या समस्वरंछलोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः। अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।। ऋ०9-73-6)**।

सत्कार्य करने वाले क्रान्तदर्शी मनीषी जो आनन्द के पात्र हैं, वे सहस्त्रों धाराओं वाले विस्तृत मनरूपी छलनी में वाणी को पवित्र करते हैं। उनके विचार कार्य और वाणी में एकरूपता होती है **(सहस्त्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्तिकवयो मनीषिणः। ऋ०9-73-7)**। ऐसा ऋत् का रक्षक आनन्द का पात्र सत्कार्य करने वाले व्यक्ति को कोई दबा नहीं सकता। दिव्य आनन्द उसे अपने सन्मार्ग पर निर्बाध गति से चलने की प्रेरणा देता है। ऐसा व्यक्ति अपने हृदय में तीनों पवित्रताओं मानसिक, वाचिक और कायिक को धारण किए रहता है। वह (वास्तविकता का) ज्ञाता सब लोकों तथा उनके तत्वों को जानता है, सब ओर से देखता है और नियमविहीन व्यक्ति हैं, दुष्ट, प्रीतिरहित जन हैं, उन्हें गड्ढे में धकेल देता है अर्थात् पूर्ण उपेक्षा करता है **(ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रातुस्त्रीष पवित्र हृद्यन्तरा दधे। विद्वान्त्स विश्वा भुवनामि पश्यत्यवाणुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।** वही, 8)। यह दिव्यानन्द (सोम) समस्त संसार का राजा है क्योंकि यह मानो सबके मन में दीप्त है, सब इसका पान चाहते हैं। यह सब बुद्धिओं का पिता या पालक है **(विश्वस्य राजा... पिता मतीनाम्।। ऋ०9-76-4)**। यह इन्दु अर्थात् प्रभावशाली दिव्य आनन्द जीवात्मा के बल को प्रेरित करता है, कर्म के इच्छुक जनों से (कर्म द्वारा) प्रेरित किया जाता हुआ यह मनीषियों के द्वारा प्राप्त किया जाता है **(इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्न-पस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः।। ऋ०9-77-2)**। दूसरे शब्दों में इस दिव्य आनन्द को प्राप्त करने के लिए जहां कर्म आवश्यक है वहीं मनीषा अर्थात् बुद्धि भी आवश्यक है। इस दिव्यानन्द से बल प्राप्त कर जीवात्मा इतनी शक्ति का अनुभव करता है जिससे पृथ्वी को ही कहीं से कहीं रख सकता हो **(हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह नेहवा कुवित्सोमस्यापामिति।। ऋ०10-119-9)**। इस दिव्यानन्द के बिन्दुओं का पान करने पर ये उसी प्रकार मुझे (अर्थात् इसका उपयोग करने वाले को) उसी प्रकार शुभ मार्ग में प्रेरित करते हैं जैसे तीव्र गति वाले घोड़े रथ को **(उन्मा पीता अयंषत रथमश्वा इवाशवः। वही, 3)**। जिसने बार-बार इस आनन्द का पान किया है, उसके पास बुद्धि अथवा अन्यजनों द्वारा की जाने वाली स्तुति उसी प्रकार रहती है जैसे शब्द करती हुई गाय अपने प्रिय बछड़े के पास रहती है **(उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्।** वही,4)। इस दिव्य आनन्द का स्थान सुखमय मस्तिष्क है। यह शोभन गति वाला सोम वहीं पहुंचता है। उसके प्रियजनों की वाणियां पहले के समान ही हो जाती हैं अर्थात् आनन्द प्राप्त करने वालों की वाणी में जो सत्य और माधुर्य पहले था वहीं अब भी है **(नाके सुपर्णमुपपक्षिवांसं गिरो केनानामकृपन्त पूर्वीः ऋ०9-85-11)**। जहां आनन्द को इन्द्र का हृदय सम्बन्धी और कलशों में रहने वाला बताया है, वहां निश्चय ही इन्द्र जीवात्मा है और कलश मानव शरीर है **(एन्त्रस्य हार्दिकलशेषु सीदति। ऋ०9-84-4)**। यह आनन्द श्री, शोभा, समृद्धि के लिए उत्पन्न हुआ है, श्री के लिए ही जाता है और स्तोताओं के लिए श्री तथा जीवन धारण करता है, उस श्री को आच्छादित करते हुए ही वे स्तोता अमृतत्व को प्राप्त करते हैं **(श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं क्यो जरितृभ्यो दधाति। श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्...।। ऋ०9-94-4)**। उस दिव्य आनन्द के प्रति अभिलाषा व्यक्त की गई है कि वह विशाल प्रकाश प्रदान करे और विद्वानों को तृप्त कर हर्षित करे (उरू ज्योतिः, कृणुहि मत्सि देवान् ऋ०9-94-5)। निश्चय ही इस उदात्त चरित्र वाला सोम कोई मादक द्रव्य कदापि नहीं हो सकता यद्यपि उसके उत्तम औषध, ईश्वर, ऐश्वर्य आदि अर्थ अनेक स्थलों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। सोम के दिव्य आनन्द होने की पुष्टि में अनेक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं।'

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

मां तो आखिर मां ही होती है

इस दुनिया में अगर सबसे पवित्र और नि:स्वार्थ कोई रिश्ता होता है तो निश्चित रूप से वो मां का होता है। 7 मार्च 2019 को मेरी पूज्य माता जी सदा-2 के लिए हमसे बिछुड़ गई। लगभग डेढ़ महीने बाद कुछ लिखने की हिम्मत कर रहा हूं। यादों की इतनी लम्बी लिस्ट है कि जिसको शब्दों में नहीं लिखा जा सकता। मैं अपनी ज़िन्दगी में आज जो कुछ भी हूँ उसमें बनाने ओर संवारने में अधिकतर योगदान मेरी पूज्य माता जी का ही है। माता जी बचपन से ही पौराणिक विचारों की थी। लेकिन मुझे पक्का आर्य समाजी बनाने में उनका ही योगदान था। उन्होंने मुझे हमेशा आर्य समाज के कार्य करने और सत्संग में जाने के लिए प्रोत्साहित किया।

हमारे बचपन के दिन सभी बहन भाईयों के लिए आर्थिक तंगी के दिन थे। लेकिन उस आर्थिक तंगी के बावजूद जिस तरह से हमारी माता जी ने हमारा सभी का ध्यान रखा, उन सभी बातों को याद करके भावुक होना स्वभाविक है। थोड़े पैसे होने के बावजूद जिस तरह से माता जी ने रिश्तेदारों सगे सम्बन्धियों का मान-सम्मान किया, आज हम उससे ज्यादा पैसे होने के बावजूद भी, माता जी के स्तर तक नहीं पहुंच सके। अब उनकी आयु लगभग 80 वर्ष की थी जो सामान्यता एक ठीक आयु मानी जाती है, लेकिन हमारे परिवार के सदस्य तो अभी इस बात के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं थे। लेकिन विधि का विधान अपने तरीके से चलता है। लेकिन मैं पाठकों से एक निवेदन जरूर करना चाहता हूँ कारोबार चलते रहेंगे, दुनियादारी भी चलती रहेगी, जिनके माता पिता जीवित हैं वो इस अवसर का लाभ उठाकर उनकी सेवा जरूर करें, उन्हें अपनापन देना अपना धर्म समझे। महर्षि दयानन्द जी ने भी जीवित माता पिता की सेवा को ही सच्चा श्राद्ध बताया है।

अन्त में मैं अपनी इस दुख की घड़ी में साथ देने के लिए मान्यवर श्री प्रेमभारद्वाज महामन्त्री सभा जिन्होंने मुझे फोन करके सांत्वना दी, कार्यालय से श्री जोगिन्द्र सिंह जी, श्री सतीश शर्मा, फरीदकोट, डा. देवराज कोटकपूरा, श्री विपन धवन, श्री इन्द्रजीत भाटिया, श्री डी. आर गोयल आर्य समाज रानी तालाब फिरोजपुर शहर सभी का दिल से धन्यवाद करता हूं। अन्त में ईश्वर से यहीं प्रार्थना है कि हम अपने पूज्य माता की रास्ते पर चल सकें ओर उनके द्वारा शुरू किए अच्छे कार्यों को आगे बढ़ा सकें। **-ललित बजाज, आर्य समाज कोटकपूरा**

पृष्ठ 8 का शेष-आर्य समाज नंगल...

आर्य एवं उनकी धर्मपत्नी, फगवाड़ा से श्री कैलाश नाथ भारद्वाज, गुरुकुल करतारपुर के प्रधान श्री ध्रुव मित्तल जी, श्री ओ.पी. खन्ना, माता कान्ता भारद्वाज, सतपाल जौली, राजी खन्ना, करण खन्ना, राजीव खन्ना, मानव, पूनम खन्ना, अशोक भाटिया, विमला भाटिया, श्रीमती नरेश सहगल, आशा अरोड़ा, दिप्ती खन्ना, सीमा खन्ना, मीनाक्षी खन्ना, पंकज खन्ना, नितिन खन्ना, गुमान चंद तालुजा, रमन तलुजा, हरेन्द्र भारद्वाज, प्रेम सागर, प्रेम प्रकाश शर्मा, महीप जौली, श्री वीना प्रेम सागर, हनी सेठ, श्री किरण सेठ, आरती खन्ना, वन्दना तालुजा, उषा ठाकुर, रेणु भारद्वाज, डा. ईश्वर सरदाना, डा. श्री अर्चना सरदाना, डा. बनारसी दास, श्री शाम सुन्दर सैनी, राजेश रल्हण, रछपाल राणा, सुभाष शर्मा, श्री सुरेन्द्र मदान, श्रीमती आंचल शर्मा, दिवान चंद, अभिषेक खन्ना, गैरव खन्ना उपस्थित हुये। मंच का संचालन आर्य समाज के प्रधान श्री सतीश अरोड़ा जी ने बहुत कुशलता से किया। अंत में प्रधान श्री सतीश अरोडा जी ने सब का धन्यवाद किया। शान्ति पाठ के पश्चात ऋषि लंगर का वितरण किया गया।

पृष्ठ 8 का शेष-आर्य समाज गांधीनगर...

मुख्य अतिथियों का फूलमालाएं पहनाकर स्वागत किया गया। तत्पश्चात छोटे-छोटे बच्चों ने सुन्दर भजन सुनाकर महर्षि दयानन्द का गुणगान किया। भार्गव नगर की माता सत्या और कान्ता जी ने ऋषि महिमा का गुणगान किया। श्री तिलकराज ने प्रभु भक्ति का गीत गाया। श्री अरूण वेदालंकार जी ने अपने मधुर भजनों के द्वारा सभी आये हुए लोगों का मन मोह लिया। तत्पश्चात श्री विजय कुमार शास्त्री जी ने आर्य समाज स्थापना के विषय में और महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों पर अपने विचार रखे। कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री सरदारी लाल जी आर्य ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पारिवारिक सत्संगों पर ज्यादा ध्यान देने को कहा। अंत में सभी मुख्य अतिथियों को महर्षि दयानन्द के स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया। आर्य समाज के प्रधान श्री राजपाल जी ने सभी विद्वानों तथा मुख्य अतिथियों का धन्यवाद किया और शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया। इस उत्सव को सफल बनाने के पीछे हमारे आर्य समाज के पूर्व प्रधान श्री बूटा राम जी की प्रेरणा है। कार्यक्रम के पश्चात सभी आर्यजनों ने ऋषि लंगर ग्रहण किया।

-पं. प्रिंस आर्य, आर्य समाज गान्धी नगर-1

पृष्ठ 4 का शेष-वेदों में नारी की स्थिति

(त्वा) आपको (दभन्) रोगादि पीड़ित करने वाले हैं।

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दादुषे।

उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदितेभ्य स्त्वा।। यजुर्वेद 8.2

विषय को आगे बढ़ाती कन्या कहती है कि आप (कदाचन) कभी भी (स्तरी:) अपने स्वभाव के छिपाने वाले (न असि) नहीं है। हे। (इन्द्र) इन्द्रियों के अधिष्ठाता आप (दाशुषे) आपके प्रति समर्पण करने वालों के प्रति (सश्चसि) प्राप्त होते हो। हे (मघवन्) यज्ञशील। (उप उप इत् सु) आप निश्चय से प्रभु के अति निकट हो। (देवस्य) देने वाले से आपको (भूय इत्) अधिक ही (दानम्) दान (पृच्यते) प्राप्त होता है। (आदितेभ्य: त्वा) मैं आदित्य तुल्य संतानों के लिए आपको प्राप्त होती हूँ।

इस मंत्र में वर के जीवन में पारदर्शिता, समर्पित व्यक्ति के प्रतिस्नेह तथा आजीविका के लिए पुष्कल धनराशि अर्जित कर लेने के गुणों का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। वेदों में यह भी वर्णित है कि वर वधु में किन गुणों की खोज करता है।

राज्ञयसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणादिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराड स्युदीची दिगधि-पत्यसि बृहती दिक्। यजु. 4.13

(हे वधु) तू (राज्ञी असि) शरीर से स्वास्थ्य की दीप्ति वाली है। मन में भक्ति की दीप्ति वाली तथा मस्तिष्क में ज्ञान की दीप्ति वाली है। इसी से (प्राचीदिक्) तेरी दिशा आगे बढ़ने की बनी है। तू अपने कार्य में अत्यन्त कुशल हो गई है। तू (विराट् असि) विशेष रूप से दीप्त हुई है। क्योंकि तू प्रत्येक कार्य को अप्रमाद तथा गम्भीरता से करती है। इसी से (दक्षिणा दिक्) तेरी दिशा दक्षिणा की हुई है। तू अपने कार्य में अति कुशल हो गई है। (सम्राट असि) तू घर पर उत्तम शासन करने वाली है, सारे घर को बड़े व्यवस्थित ढंग से चलाती है। (प्रतीची दिक्) तू इन्द्रियों का प्रत्याहरण करने वाली बनी है (स्वराट् असि) तू अपना शासन करने वाली बनी है। (अधि पत्नी असि) तू घर की अधिष्ठान रूपेण रक्षिका है। (बृहती दिक्) घर को सब प्रकार से बढ़ाने की ही तेरी दिशा है। घर की सर्वोन्मुखी उन्नति करने में तू प्रवृत है।

मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरूणा घर्त्र्यसि धरणी।

आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा।। यजु. 14.21

(मूर्धासि) तू सूर्य की तरह ज्ञान की दीप्ति से चमकने वाली है तथा (राट्) बड़े व्यवस्थित जीवन वाली है, (ध्रुवा असि) तू पृथ्वी के समान अडिग है, मर्यादा में रहने वाली है, (धरूण) सबको धारण करने वाली बनती है (धर्त्री असि) तू वायु के समान सबके जीवन को धारण करने वाली है। (धरणी) स्वास्थ्य की धारण से दीर्घायु का धारण करने वाली बनती है। (त्वा) तेरा सखित्व (वर्चसे) वर्चस के लिए होता है। (कृष्यै त्वा) मैं तेरा सखा बनता हूँ और (क्षेमाय त्वा) तुझे योग क्षेम के साधन के लिए अपनाता हूँ।

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवसि धरित्री।

ईषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा। यजु. 14.22

तू (यन्त्री) अपने जीवन पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाली है। इसी का परिणाम है कि तू (राट्) चमकती है। और वस्तुत: (यन्त्री) सबको नियमित जीवन वाला बनाती है। (ध्रुवा असि) तू पृथ्वी के समान अडिग है (धरित्री) सबका धारण और पोषण करने वाली है। इतना सुन कर वधु कहती है कि मैं (त्वा) तुझको अपना जीवन साथी बनाती हूँ। (इषे) अन्न की प्राप्ति के लिए, मैं (ऊर्जे त्वा) आपको वरती हूँ जिससे हमारा जीवन एवं शक्ति सम्पन्न बने। (रय्यै त्वा) मैंने आपका वरण इसलिए किया है कि आप गृह कार्य के लिए धनार्जन करने वाले होंगे। (पोषाश्त्वा) सबका पोषण करने के लिए मैंने आपका वरण किया है।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवेत्वा सूर्याय त्वा।

ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ।। यजु. 6.25

(त्वा) तुझे मैं अपना जीवन साथी बना रहा हूँ। (त्वा) मैं तुझसे यह सम्बन्ध (हृदे) हृदय के लिए कर रहा हूँ (मनसे) मनके लिए (दिवे त्वा) मैं तुझे स्वर्ग निर्माण के लिए अपना रहा हूँ। (इमम् अध्वरम्) सबका पालन करने वाले इस यज्ञ को तूने (ऊर्ध्वम्) सबसे ऊपर स्थापित करना (दिवि) स्वर्ग के निमित्त तथा (देवेषु) दिव्यगुणों की प्राप्ति के निमित्त (होत्रा) हवियों को (यच्छ) देना। **(क्रमश:)**

आर्य समाज नंगल का 69वां वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज नंगल टाउनशिप के 69वें वार्षिक उत्सव के अवसर पर मंच से प्रवचन करते हुये श्री महात्मा चैतन्य मुनि जी जबकि चित्र दो में उपस्थित जनसमूह। चित्र तीन में आर्य समाज नंगल के प्रधान श्री सतीश अरोडा जी, संरक्षक श्री आसकरण सरदाना जी एवं ओ.पी. खन्ना जी श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी को सम्मानित करते हुये। उनके साथ खड़े हैं श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पंजाब एवं सभा मंत्री श्री विनोद भारद्वाज जी।

आर्य समाज नंगल टाउनशिप का 69वां वार्षिकोत्सव 9 मई से 12 मई 2019 तक बड़े ही हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। 9 मई से 11 मई तक प्रतिदिन हवन के पश्चात प्रवचन एवं भजन होते रहे। मुख्य कार्यक्रम 12 मई 2019 को प्रातः हवन यज्ञ से आरम्भ हुआ। श्री प्रेम सागर जी उपाध्यक्ष सपत्नीक मुख्य यजमान के रूप में उपस्थित हुये। पुरोहित श्री कृष्ण कांत शर्मा जी ने पवित्र मंत्रोच्चारण द्वारा पूर्णाहुति से यज्ञ सम्पन्न करवाया। चार दिन के कार्यक्रम में विशेष रूप से आमंत्रित वैदिक प्रवक्ता महात्मा चैतन्य मुनि जी व पूज्या माता सत्याप्रिया यति जी ने सभी नगरवासियों का मार्ग दर्शन किया। महात्मा चैतन्य मुनि जी ने कहा कि मनुष्य का जीवन कर्म सिद्धान्त पर आधारित है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। उन्होंने कहा कि जीवन में सभी कार्य सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये। सभी का उद्देश्य समाज पर उपकार करना व हर किसी को अपनी उन्नति से संतुष्ट न रह कर सब की उन्नति को अपनी उन्नति समझनी चाहिये। अंधविश्वास, पाखंड, आडम्बर में न पड़ कर वेदों का अनुसरण करना चाहिये। इसी में प्राणी मात्र का कल्याण, समृद्धि समाई है इसलिये जीवन में सदैव विद्वानों से मार्ग दर्शन प्राप्त करना जरूरी है।

इस अवसर पर विशेष रूप से फगवाड़ा से पधारी हुई श्रीमती सरला भारद्वाज अध्यक्षा संस्कृत विभाग एस.डी.कालेज जालन्धर ने कहा कि वेद ही सबसे पुराना ग्रंथ है। वेद ही ईश्वरीय वाणी है। वेदों का अनुसरण करके अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये और कहा कि अपने विचारों का आदान प्रदान करने के लिये, प्रान्तीय भाषा के साथ हमारे राष्ट्र की भाषा होनी चाहिये हिन्दी। हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी हो और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सपने को भारत वर्ष को आर्यवर्त बनाने एवं आर्यवर्त को विश्व गुरु बनाने का आह्वान किया। इस अवसर पर चण्डीगढ़ से श्री रघुनाथ राय, श्री ईश्वर जी और आनन्दपुर से श्री सतपाल हरीश जी ने कार्यक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा की।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर के मंत्री श्री विनोद भारद्वाज जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि भारत वर्ष में आर्य समाज ही ऐसी संस्था है जोकि समाज में फैली कुरीतियों, पाखंडों एवं अंधविश्वास को मिटा सकती है। ऋषि के बताये मार्ग पर चलते हुये आर्यजन महर्षि के विचारों का प्रचार प्रसार करने हेतु आर्य समाजों में पर्वों का आयोजन करते रहना चाहिये। इनके साथ आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिष्ठाता साहित्य विभाग श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी भी आर्य समाज नंगल टाउनशिप के कार्यक्रम पर विशेष रूप से पधारे हुये थे।

विशेष रूप से पधारे पंजाब विधानसभा के स्पीकर आदरणीय श्री कंवरपाल सिंह राणा जी ने अपेन संदेश में कहा कि आर्य समाज ही एक ऐसी संस्था है जो मानवता के कल्याण के लिये कार्य करती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा देश की आजादी के लिये स्वराज आन्दोलन की घोषणा एवं क्रान्तिकारियों द्वारा अपनी जान की दी गई आहुतियों की सराहना की। आर्य समाज नंगल के पदाधिकारियों संरक्षक श्री आसकरण जी सरदाना, प्रधान श्री सतीश अरोडा जी, मंत्री श्री हरेन्द्र भारद्वाज जी, आर्य समाज के कोषाध्यक्ष जी ने श्री कंवरपाल सिंह राणा को दोशाला, स्मृति चिन्ह व सत्यार्थ प्रकाश भेंट कर सम्मानित किया। इस अवसर पर शहर के गणमान्य नगरवासी एवं समाज के संरक्षक श्री आसकरण दास सरदाना, लुधियाना से श्री मनोहर लाल जी **(शेष पृष्ठ सात पर)**

आर्य समाज गांधी नगर-1 जालन्धर का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज वेद मन्दिर गांधी नगर-1 जालन्धर के वार्षिकोत्सव एवं आर्य समाज स्थापना दिवस के अवसर पर उपस्थित जनसमूह।

आर्य समाज वेद मन्दिर गांधी नगर-1 का वार्षिकोत्सव एवं आर्य समाज स्थापना दिवस 26 अप्रैल 2019 से 28 अप्रैल 2019 रविवार तक मनाया गया। 21 से 25 अप्रैल तक प्रातः काल प्रभात फेरियों का आयोजन किया गया और लोगों को आर्य समाज के वार्षिक उत्सव की सूचना दी गई। 26 और 27 अप्रैल को रात्रि 8:00 से 10:00 बजे तक आर्य समाज वेद मन्दिर में सत्संग एवं वेद कथा का आयोजन किया गया जिसमें मुख्य वक्ता आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय कुमार शास्त्री, श्री सुरेश शास्त्री, भजनोपदेशक श्री अरूण वेदालंकार, पं. मनोहर लाल जी थे। सभी विद्वानों एवं भजनोपदेशकों में अपने भजनों एवं प्रवचनों के द्वारा लोगों का मार्गदर्शन किया। मुख्य समारोह दिनांक 28 अप्रैल 2019 रविवार को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वरिष्ठ उपप्रधान श्री सरदारी लाल जी आर्य की अध्यक्षता में हुआ। सर्वप्रथम 9:00 से 10:00 बजे तक यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा पं. विजय कुमार शास्त्री जी थे। इस यज्ञ में मुख्य यजमान बाबू जोगिन्द्रपाल एवं कृष्णा जी, श्री भारत भूषण जी सपत्नीक, श्री वेद जी सपत्नीक, श्री सुशान्त कौशल सपत्नीक, पं. राज कुमार के सुपुत्र सपत्नीक, पं. अनिल जी सपत्नीक थे। सभी यजमानों ने विश्व कल्याणार्थ यज्ञ में आहुतियां प्रदान की और पुण्य प्राप्त किया। विद्वानों द्वारा सभी यजमानों को पुष्पवर्षा करके आशीर्वाद दिया एवं प्रसाद वितरण किया गया। यज्ञ के पश्चात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपप्रधान श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा जी के करकमलों द्वारा ध्वजारोहण किया गया। आर्य समाज के अधिकारियों द्वारा सभी **(शेष पृष्ठ सात पर)**

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।